# दक्षिण एशिया में प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का सवाल

❑ राघवेन्द्र प्रपन्न

दक्षिण एशिया एक समान विरासत की साझेदारी करता है जहां एक मिश्रित संस्कृति है और जिसके पास साथ-साथ रहने तथा परस्पर व्यवहार करने की शताब्दियों की स्मृतियां हैं। इस क्षेत्र के राष्ट्रों ने दशकों औपनिवेशिक वर्चस्व के शोषण की प्रक्रिया झेली है तथा इसके खिलाफ संघर्ष किया है । इस साझा अतीत की तरह इन देशों के वर्तमान में भी एक विड़म्बनाजनक साम्य है । मानव विकास के बुनियादी सूचकांकों में दक्षिण एशियाई देश बाकी 'दुनियां से पिछड़े हैं । यह वह क्षेत्र है, जहां अधिसंख्य वयस्क महिलाएं निरक्षर हैं । यह लेख विभिन्न शोध-अध्ययनों के समेकन के आधार पर बताता है कि इन देशों के शिक्षा-तंत्र में ही जड़ता और पूर्वाग्रहों की प्रबलता व्याप्त नहीं है बल्कि गुणवत्ता के लिहाज से भी यहां की शिक्षा अपनी जीवंतता खो चुकी है। इस क्षेत्र के शैक्षिक हालात को समझने के लिए हमें कई तरह के सिद्धांतों एवं विमर्शों, उपागमों और दृष्टिकोणों की ओर देखना होगा ।

शिक्षा क्षेत्र की चिन्ताओं, शोध परिक्षेत्रों एवं विमर्श की परिधि में एक क्षेत्र के रूप में दक्षिण एशिया और इसके अन्तर्गत आने वाले देश लगातार उपेक्षित रहे हैं । इसका निहितार्थ यह है कि एक क्षेत्र के रूप में दक्षिण एशिया तथा इसके देश अभी भी वह हैसियत नहीं पा सके हैं कि उनके संबंध में हम व्यवस्थित अध्ययन की बात सोच सकें । हमारे अध्ययन सरोकारों में पड़ोसी देशों एवं अपने ही क्षेत्र (दक्षिण एशिया) के प्रति यह उदासीनता न केवल शिक्षा के क्षेत्र में रही है बल्कि राजनीति, अर्थतंत्र इत्यादि संबंधों के हर स्तर पर रही है । शिक्षा, निश्चित रूप से इसकी गहरे तौर पर शिकार रही है । यही वजह है कि हम दक्षिण एशिया तथा उसके देशों की शैक्षिक स्थिति, उसकी चुनौतियों, वहां की जाने वाली पहल एवं उनमें होने वाले बदलावों को लेकर एक अनजानेपन की स्थिति में है । यह अनजानापन मुख्यत: दो स्तरों पर है । पहला स्तर है - इस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले देशों की अपनी विशिष्टतायें और दूसरा स्तर है, एक क्षेत्र विशेष के तौर पर दक्षिण एशिया की अपनी विशिष्टता एवं पहचान । कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों ही स्तर एक दूसरे से असम्बद्ध एवं स्वतंत्र नहीं हैं ।

अजनबीपन की यह स्थिति तब है जब दक्षिण एशिया एक समान विरासत की साझेदारी करता है जहां एक मिश्रित संस्कृति है और जिसके पास साथ-साथ रहने तथा परस्पर व्यवहार करने की शताब्दियों की स्मृतियाँ हैं । इस क्षेत्र के राष्ट्रों ने दशकों औपनिवेशिक वर्चस्व के शोषण की प्रक्रिया झेली है तथा इसके खिलाफ संघर्ष किया है । औपनिवेशिक अतीत से ये राष्ट्र लगभग एक ही समय में उबरे हैं और आज एक दूसरे के आमने-सामने भी खड़े हैं । इनके बीच राष्ट्रराज्य की खींची गई सीमाओं की लकीरें गहराई हैं । कई मायनों में ये राष्ट्र आपस में एवं अपनी सीमाओं के अन्दर भी ऐसा बर्ताव करते हैं एवं ऐसे संदेश देते हैं मानों इनमें कोई स्वाभाविक एवं बुनियादी टकराहट है । औपचारिक एवं अनौपचारिक रूपों में (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) इस कृत्रिम अन्तर्विरोध को हवा दी जाती रही है ।

राजनीति तथा कई मायनों में दो राष्ट्र के सिद्धांत से प्रेरित राष्ट्रीय आख्यानों तथा संवादों ने एक ऐसी मनोभाविक स्थिति की रचना की है जो इस क्षेत्र विशेष की सम्पूर्णता में एवं सुव्यवस्थित समझ बनाने की प्रक्रिया में कई रोड़े अटकाती है । बावजूद इस तथ्य के कि इस क्षेत्र के समाजों में व्यापक रूप से सामाजिक विषमता, गरीबी, खराब स्वास्थ्य, धीमी गति की आर्थिक प्रगति है। साथ ही साथ ये राष्ट्र सीमा संबंधी विवादों एवं आन्तरिक कलह से भी जूझते हुए रक्षात्मक बजट पर भी भारी खर्च कर रहे हैं । साक्षरता, प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, शिक्षा में लिंग समानता, प्राथमिक शिक्षा नामांकन दर, बीच में ही स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों का प्रतिशत, शिक्षक-छात्र अनुपात, यानी लगभग शिक्षा के हर स्तर पर यह क्षेत्र दुनिया के अन्य क्षेत्रों से काफी पिछड़ा हुआ है ।

इसके अलावा यह क्षेत्र शिक्षा के गुणात्मक स्तर पर भी कई समान प्रवृत्तियों तथा विशिष्टताओं की साझेदारी करता है । उधार की ज्ञान-प्रणाली की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाए बगैर ही इसका संस्थानीकरण, ज्ञान की देशज प्रणाली को व्यवस्थित तरीके से नष्ट किया जाना तथा विकास की योजनाओं एवं स्कूल की पाठ्यचर्या

से इस एजेण्डे को बाहर रखना, सामाजिक परिवर्तन के सशक्त साधन के रूप में शिक्षा की पुनर्रचना करने की जगह खालिस उपयोगितावादी परिप्रेक्ष्य से प्रेरित होकर शिक्षा का तुच्छीकरण, शिक्षा में पितृसत्तात्मकता, सामन्ती प्रवृत्ति, जातिवाद, वर्ग आधारित असमानता, कट्टरवाद, पुरातनवाद जैसे असमानता एवं अन्याय के पारंपरिक आधारों को शिक्षा में संबोधित करने की अनिच्छा, शिक्षा में विविधता को एक ताकत के रूप में न देखते हुए उसे भार के रूप में लेना और विविधता को दबाकर एकरूपता थोपने का प्रयास, ज्ञान का बढ़ता हुआ विच्छिन्नीकरण (सद्गोपाल, 1999)। पितृसत्तात्मक मानकों से लड़कियों की शिक्षा पर पड़ने वाला असर, शिक्षा के जरिए औपनिवेशिक विरासत का ढोया जाना, शिक्षा पर केन्द्रीय नियंत्रण एवं ज्ञान का सरकारीकरण (अहमद, 1999)। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों का अभिजात्यीकरण और राष्ट्रराज्य के अस्तित्व को गैरयर्थाथवादी ढंग से वैधता दिलाने के क्रम में शिक्षा को इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति (कुमार, 2001; मुर्शीद, 1997; अहमद, 1999)। बहुसंख्यक एवं लोकप्रियतावादी नजरिया एवं अल्पसंख्यक समुदाय को सुनने, समझने तथा उन्हें दर्ज करने की अनिच्छा एवं असाक्षरता (अहमद् 1999; तज्जुद्दीन, 1999; बनर्जी, 1999)। अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक पहचान का संकट एवं उन्हें दबंग संस्कृति के अन्तर्गत जबरन लाने की प्रक्रिया । देश का ऐसा राष्ट्रवादी इतिहास लेखन किया जाना जिसमें दबंग समूह के अतिरिक्त अल्पसंख्यक एवं हाशिए के समूह के लिए कोई जगह न हो (वानस्केन्डल, 2000; शर्मा एवं ओमेन, 2002; बनर्जी, 1999; अहमद, 1999) । कुल मिलाकर ये प्रवृत्तियां दक्षिण एशिया में बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा को गहरे तौर पर प्रभावित कर रही हैं । इस समूचे परिदृश्य के आधार पर इस बात की पूरी संभावना बनती है कि इसमें बच्चों द्वारा ज्ञान को लोकतांत्रिक रूप से पाने के अधिकार, शिक्षाशास्त्र के अपने मूल्य, मसलन बच्चों के बौद्धिक, संवेगात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, विविध दृष्टिकोणों, परिप्रेक्षों, विचारधाराओं को स्वतंत्रतापूर्वक एवं आलोचनात्मक ढंग से जानने तथा उन पर अपनी राय, नजरिया बनाने के लोकतांत्रिक बाल-हित नकारात्मक रूप से प्रभावित हों। अत: इस संदर्भ में प्रासंगिक होगा कि दक्षिण एशिया क्षेत्र विशेष की प्राथमिकता शिक्षा से जुड़े हुए विविध आयामों, सरोकारों, इस दिशा में किए गए प्रयासों, नवाचारों तथा इस क्षेत्र की चिन्ताओं और चुनौतियों की एक तुलनात्मक समझ बनाएं ।

दुनिया भर में आज शिक्षा खासकर साक्षरता एवं प्राथमिक शिक्षा, जीवन की बुनियादी विकासात्मक अवधारणा से जुड़ गई है। मानव विकास के बुनियादी सूचकों में भी प्राथमिक शिक्षा एक अनिवार्य सूचक के रूप में शामिल हो गई है । लेकिन दुनिया के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले दक्षिण एशिया प्राथमिक शिक्षा के हर स्तर पर बहुत पीछे है । हालांकि इन देशों के संविधान, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्य योजना में शिक्षा, खासकर प्राथमिक शिक्षा को सब तक पहुंचाने पर जोर दिया जाता रहा है। पर इसके बावजूद भी दक्षिण एशिया शिक्षा के हर स्तर पर दुनिया के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले बहुत पीछे है । प्राथमिक शिक्षा के प्रति यह प्रतिबद्धता वैश्विक मंचों पर भी अनेक अवसरों पर दुहराई जाती रही है । मसलन, 1948 में मानवाधिकारों की घोषणा, न्यूयार्क, 1990 में 'सभी के लिए शिक्षा पर हुए विश्वसम्मेलन' नई दिल्ली, 1993 में सम्पन्न नौ उच्च जनसंख्या वाले देशों के सम्मेलन इत्यादि अवसरों पर ।

फिर भी दक्षिण एशियाई क्षेत्र विकासशील देशों की तुलना में भी शिक्षा के विभिन्न सूचकों में काफी पिछड़ा हुआ है । आँकड़े यह बतलाते हैं कि वयस्क साक्षरता के लिहाज से दक्षिण एशिया, विकासशील देशों की तुलना में 20% नीचे है । पुरूष साक्षरता के क्षेत्र में 14% पिछड़ा हुआ है । महिला साक्षरता की दृष्टि से तो दक्षिण एशिया विकासशील देशों से बहुत ही नीचे है । विकासशील देश महिला साक्षरता के लिहाज से दक्षिण एशिया से 22% की बढ़त पर हैं । प्राथमिक स्तर पर सकल दर्ज अनुपात के नजरिये से इन दोनों का फर्क उल्लेखनीय नहीं है । महज 3% का फर्क है । माध्यमिक सकल दर्ज अनुपात स्तर के लिहाज से दक्षिण एशिया विकासशील देशों से 8% पिछड़ा हुआ है । सभी स्तरों पर संयुक्त नामांकन की दृष्टि से यह क्षेत्र विकासशील देशों के मुकाबले 9 प्रतिशत पीछे है ।

कक्षा पाँच तक पहुंचने से पहले ही बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों के मामले में दक्षिण एशिया विकासशील देशों से 9% पीछे है । अगर पुरूष साक्षरता को संदर्भ (यानी पुरूष साक्षरता 100%) मानें तो विकासशील देशों में महिला साक्षरता 81 % है । इस दृष्टि से दक्षिण एशिया में महिला साक्षरता का प्रतिशत है - 63% यानी विकासशील देशों के मुकाबले 18% पीछे (देखें तालिका संख्या 1)।

दक्षिण एशिया ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति भी की है । दक्षिण एशिया के कुछ भागों में अनुभव उत्साहजनक भी हैं । दक्षिण एशिया ने 46 % वयस्क साक्षरता के साथ सन् 1990 के दशक में प्रवेश किया । और दशक के अंत में 54% तक पहुंच गया । इस लिहाज से एक दशक में 8% बढ़ोतरी रही । इस शताब्दी की शुरूआत में मालद्वीप एवं श्रीलंका ने 90% से भी ऊपर वयस्क साक्षरता का लक्ष्य हासिल किया जो इस क्षेत्र (दक्षिण एशिया) की औसत वयस्क साक्षरता (46%) से काफी ऊपर है । वहीं इस क्षेत्र में नेपाल तथा बांग्लादेश की साक्षरता दर सबसे नीचे रही । हालांकि सन् 1990-2000 के बीच इस दिशा में नेपाल ने 16% की बढ़ोत्तरी का प्रदर्शन किया था (देखें तालिका संख्या 2) ।

**तालिका संख्या : 1**

**दक्षिण एशिया एवं विकासशील देशों में शिक्षा की तस्वीर**

| | दक्षिण एशिया | विकासशील देश |
|---|---|---|
| वयस्क साक्षरता दर (% 15 वर्ष एवं उससे ऊपर) 2000 | 54 | 74 |
| पुरूष साक्षरता दर (% 15 वर्ष एवं उससे ऊपर) 2000 | 66 | 80.3 |
| महिला साक्षरता दर (% 15 वर्ष एवं उससे ऊपर) 2000 | 42.3 | 64.5 |
| प्राथमिक सकल नामांकन (%) 1998 | 101 | 104 |
| माध्यमिक स्तर पर नामांकन (%) 1998 | 48 | 56 |
| सभी स्तरों पर संयुक्त नामांकन (%) 1999 | 52 | 61 |

**संकलित; स्रोत** - ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया

विडम्बना है कि इस तरह की बढ़ोत्तरी के बावजूद दक्षिण एशिया में असाक्षरों की कुल संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है । सन् 1990 में दक्षिण एशिया में कुल असाक्षरों की कुल संख्या 366 मिलियन थी जो सन् 1997 तक बढ़कर 388 मिलियन हो गई । असाक्षरों की कुल संख्या के लिहाज से भारत की तस्वीर तो बहुत ही खराब है। भारत इस क्षेत्र का सबसे अधिक असाक्षरों वाला देश है। सन् 1990 में यहां करीब 274 मिलियन असाक्षर बसते थे यानि कुछ जनसंख्या का तिहाई । सन् 1997 में यह संख्या भी बढ़कर 284 मिलियन हो गई । पाकिस्तान की हालत भी इस दृष्टि से चिंतनीय है । पाकिस्तान में सन् 1990 में 43 मिलियन से अधिक ऐसे लोग बसते थे जो न तो लिख सकते थे और न हीं पढ़ सकते थे । सन् 1997 में यह संख्या भी बढ़कर 47 मिलियन हो गई। साक्षरता के लिहाज से दुनिया के अन्य क्षेत्रों से दक्षिण एशिया के पिछड़े होने का अंदाज इस बात से हो जाता है कि इस क्षेत्र के अकेले तीन बड़े राज्य बांग्लादेश, भारत और पाकिस्तान में दुनिया भर के लगभग आधे (45%) असाक्षर बसते हैं (देखें तालिका संख्या 3)।

**तालिका संख्या : 3**

**दक्षिण एशिया में असाक्षरों की कुल संख्या (लाख में)**

| देश | 1990 | 1997 |
|---|---|---|
| भारत | 274.1 | 284.8 |
| पाकिस्तान | 43.4 | 47.2 |
| बांग्लादेश | 39.6 | 46.1 |
| नेपाल | 7.4 | 8 |
| श्री लंका | 1.3 | 1.2 |
| भूटान | 0.6 | 0.6 |
| मालद्वीप | 0.07 | 0.06 |
| कुल | 366 | 388 |

**संकलित; स्रोत** - ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया

दक्षिण एशिया वह क्षेत्र है, जहां अधिसंख्य वयस्क महिलाएं असाक्षर हैं । इस क्षेत्र ने सभी स्तरों पर नामांकन दर में अच्छी प्रगति की है । पर जिस दर से इस क्षेत्र में स्कूल जाने वाले आयु वर्ग की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उस दर से यह प्रगति दयनीय मानी जाएगी। शिक्षा की इस दयनीय स्थिति के बावजूद विडम्बना है कि इस क्षेत्र (दक्षिण एशिया) के देशों में शिक्षा पर किए जाने वाला खर्च अपर्याप्त ही नहीं बल्कि निराशाजनक है। इसका एक साधारण विश्लेषण यह है कि अभी भी दक्षिण एशिया के देश शिक्षा की इस चुनौती से निपटने के लिए दृढ़ राजनैतिक इच्छा का प्रदर्शन नहीं कर रहे हैं ।

**तालिका संख्या : 2**

**वयस्क साक्षरता दर**

| | 1990 | | | 2000 | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| देश | सम्पूर्ण | पुरूष | महिला | सम्पूर्ण | पुरूष | महिला | वृद्धि सम्पूर्ण |
| भारत | 48 | 62 | 34 | 57 | 68 | 45 | 9 |
| पाकिस्तान | 35 | 47 | 21 | 43 | 58 | 28 | 8 |
| बांग्लादेश | 35 | 47 | 22 | 41 | 52 | 30 | 6 |
| नेपाल | 26 | 38 | 13 | 42 | 60 | 24 | 16 |
| श्री लंका | 88 | 93 | 84 | 92 | 94 | 89 | 4 |
| भूटान | 38 | 0 | 0 | 47 | 0 | 0 | 9 |
| मालद्वीप | 95 | 0 | 0 | 97 | 97 | 97 | 2 |
| दक्षिण एशिया | 46 | 58.9 | 31.8 | 54 | 65.5 | 42 | 8 |

**संकलित; स्रोत** - ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया

मानव विकास रपट (ह्यूमन डेव्लपमेंट रिपोर्ट, 2002) ने विभिन्न महाद्वीपों के देशों में प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की स्थिति को मापने के लिए छ: सूचक जारी किए हैं । ये छ: सूचक इस प्रकार हैं (1) 'प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण' कर चुके देश (2) जो सार्वजनीकरण के रास्ते में हैं (3) जो पीछे रह गए हैं (4) वह जो बहुत ही पीछे रह गए हैं (5) इस श्रेणी में वो देश आते हैं जो पीछे की सीट पर सो रहे हैं (6) इस श्रेणी में उन देशों को रखा गया है जिनके संबंध में कोई आंकडा उपलब्ध नहीं है । रपट के अनुसार केवल आठ देश ऐसे हैं जिन्होंने अपने यहां प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण कर लिया है । ध्यातव्य है कि इसमें दक्षिण एशिया का एक भी देश नहीं है । सब-सहारा अफ्रीका को छोड़कर बाकी चारों महाद्वीपों के कुछ न कुछ देश इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । रपट ने कुल 43 वैसे देश गिनाये हैं जो प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की राह पर हैं । पर एक दक्षिण एशिया ही ऐसा क्षेत्र है जिसका एक भी देश इस राह पर नहीं है । रपट के अनुसार इस राह में काफी पीछे छूट गए देशों की संख्या 15 है । विडम्बना यह है कि इसमें भी दक्षिण एशिया का एक भी देश शामिल नहीं है। रपट बतलाती है कि 7 ऐसे देश हैं जो प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में पिछली सीट पर सो रहे है। कुल मिला-जुलाकर इसी श्रेणी में दक्षिण एशिया को जगह मिली है । इस श्रेणी में भी दक्षिण एशिया का मात्र एक देश ही है। इसके अलावा प्राथमिक शिक्षा की प्रगति की स्थिति बतलाने वाले उक्त छ: सूचकों में दक्षिण एशिया की उपस्थित शून्य के रूप में है । यह रपट प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक समानता को हासिल करने वाले देशों की संख्या 20 निर्धारित करती है । इसमें सभी ही क्षेत्रों के कुछ न कुछ देश अवश्य शामिल हैं । पर दक्षिण एशिया ही एक ऐसा क्षेत्र है जिसका कोई भी देश इसमें शामिल नहीं है । प्राथमिक शिक्षा में लैंगिक समानता की प्रगति को दर्शाने वाले अन्य सूचकों में भी दक्षिण एशिया क्षेत्र सबसे पिछडा हुआ है । एक अन्य दस्तावेज के अनुसार प्राथमिक शिक्षा पूरी करने वाले विद्यार्थियों के प्रतिशत के हिसाब से (सन् 1995-2001 के बीच) भी यह क्षेत्र, अन्य सभी क्षेत्रों से पिछड़ा रहा है। चाहे वह पुरूष का मामला हो अथवा महिला का । (देखें तालिका संख्या 4) ।

शिक्षा में गुणात्मक स्तर पर भी इस क्षेत्र की कुछ विशिष्टतायें हैं । मसलन खराब पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तक से गुजरने की विवशता के कारण छात्रों में वैज्ञानिक मिजाज एवं आलोचनात्क दृष्टिकोण को पनपने का मौका नहीं मिल पाना, विद्यार्थियों को आंशिक सामाजिक यथार्थ पर प्रतिबिम्बन करने की इस रूप में इजाजत देना जिससे कि उनके मस्तिष्क को पूर्वनिर्धारित ढर्रे पर डाला जा सके, स्कूलों के ऐसे पदानुक्रम (हाईयार्की) तथा समानांतर ढाँचे खड़ा किया जाना ताकि वर्तमान सामाजिक असमानताएं बनी रहें, बच्चों को उनकी मातृभाषा एवं संस्कृति की जड़ों से काटकर उनका असशक्तिकरण (1999)। शिक्षा के माध्यम से बच्चों को एक खास दबंग संस्कृति के वर्चस्व के बीच रखना । राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय एकीकरण के औजार के रूप में शिक्षा का इस्तेमाल, सीमा पर होने वाले विस्थापन एवं उसका बच्चों की शिक्षा पर पड़ता असर, विस्थापन के जरिए बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाला असर। अप्रासंगिक एवं अलग-अलग करने वाली शिक्षा की प्रक्रिया (अहमद, 1999) । पाठ्यचर्या का अभिजात्य विचारधारा से लदा होना और गरीब तथा कमजोर तबकों की अभिव्यक्ति का हाशियाकरण । शिक्षा के जरिए बच्चों को राष्ट्रवादी आख्यानों से गुजारना (कुमार, 2001; बनर्जी, 1999) ।

**तालिका संख्या : 4**

**प्राथमिक शिक्षा पूरी करने वाले विद्यार्थियों की दर सन् 1995 - 2001 के बीच**

| | पुरूष | महिला |
|---|---|---|
| पूर्व एशिया एवं पेसिफिक | 108 | 103 |
| यूरोप एवं मध्य एशिया | – | – |
| लैटिन अमेरिका एवं कैरेबीया | – | – |
| मध्यपूर्व एवं उत्तर अफ्रीका | 90 | 83 |
| दक्षिण एशिया | 86 | 61 |
| सबसहारा अफ्रीका | – | – |

**संकलित; स्रोत** - वर्ल्ड एटलस, 2003, पृ. 61

शिक्षाविदों का मानना है कि दक्षिण एशिया की शैक्षिक समस्याओं की जड़ें इन देशों की औपनिवेशिक विरासत में गहरे पेबस्त हैं । दक्षिण एशिया अपने मूलभूत चरित्र में अभी भी औपनिवेशिक विरासत से अपने को मुक्त नहीं कर पाया है । इसलिए यहां की शैक्षिक असफलताओं, समस्याओं एवं जटिलताओं की सटीक समझ तब तक नहीं बनाई जा सकती जब तक कि हम उन औपनिवेशिक स्थापनाओं, संस्कारों एवं ढाँचों को न समझ लें जो औपनिवेशिक विरासत की देन हैं और जिस पर दक्षिण एशिया की शिक्षा टिकी हुई है । भट्टाचार्य (1995) का मानना है कि इसी औपनिवेशिक प्रवृत्ति में गिरफ्त होने के कारण दक्षिण एशिया के देशों ने अपने यहां ख़डी की जा रही शिक्षा व्यवस्था का संदर्भ अपनी संस्कृति एवं परंपरा में न ढूंढ कर अन्यत्र ढूंढा । यही वजह है कि दक्षिण एशियाई देशों की शिक्षा इस रूप में समस्याग्रस्त है । लेखक का मानना है कि दक्षिण एशिया की शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा अपेक्षाओं को समेटने में असफल रही है ।

इस तरह से ये देश असाक्षरता, असमान शैक्षिक अवसरों की व्याप्ति, राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का अभाव, असंगठित शैक्षिक संस्थाएं, भाषागत समस्याओं, दरिद्र शैक्षिक सुविधाओं आदि से गुजर रहे हैं। यहां तक कि इन देशों में विज्ञानसम्मत अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए भी सुविधाओं का अभाव है । राजनैतिक अस्तव्यस्तता तथा आर्थिक दारिद्रय की स्थिति शिक्षा की समस्याओं को और भी बढ़ाती है (भट्टाचार्य; 1995, 65-66)।

आदिशेशैया (1998) ने दक्षिण एशियाई देशों के शैक्षिक स्थिति के पांच ऐसे क्षेत्रों की पहचान की है जिसमें इन देशों ने ठीक से प्रगति नहीं की है । पहला यह कि प्रजातंत्र के अनुसार जीवन को साधने में यहां की शिक्षा ने लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित नहीं किया है । दूसरा यह है कि यहां की शिक्षा व्यवस्था ने साधन सम्पन्न अल्पसंख्यक वर्ग एवं अपेक्षाकृत साधनविहीन बहुसंख्यक लोगों के बीच पाई जाने वाली खाई को पाटने की जगह इसे गहरा ही किया है । तीसरा यह कि यहां की शिक्षा व्यवस्था ने पढ़े-लिखे लोगों के लिए रोजगार पाने के अवसर नही पनपाए हैं बल्कि उसने उसमें बेरोजगार रहने के 'पासपोर्ट' ही बांटे हैं। इसके पीछे कारण यह है कि यहां का पाठ्यक्रम, यहां का कार्य जगत, ग्रामीण कृषि व्यवस्था तथा कृषि-उद्योगमूलक वास्तविकताओं के अनुरूप नहीं है। साथ ही साथ इसकी संगति शहरी उत्पादन, कारखानों तथा सामाजिक सेवा सेक्टरों से भी नहीं है । चौथा यह कि यहां की शिक्षा व्यवस्था मूलत: उपनिवेशकों द्वारा स्थापित की गई अभिजात्य शिक्षा व्यवस्था को ही आज तक ढोती आ रही है । पांचवा यह कि यहां स्कूली एवं महाविद्यालयी शिक्षा को पूरा करने वाले वे विद्यार्थी हैं जो समाज के ऊपर के वर्ग से आते हैं । इनसे ऊपर यह है कि शिक्षा के वित्त वितरण में जहां बहुसंख्यक गरीबों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी वहीं इसे अल्पसंख्यक धनी वर्ग की शिक्षा के लिए हस्तांतरित किया जा रहा है। (भट्टाचार्य; 1995, 66)।

शिक्षा एवं शिक्षक-प्रशिक्षण को विषय बनाकर किया गया एक अध्ययन दिखलाता है कि पाकिस्तान में 'स्मृति आधारित शिक्षा', गैर-प्रेरणादायक पुस्तकें एवं पाठ्यचर्या की समस्या मुख्य रूप से व्याप्त है । शिक्षा संबंधी निर्णय भी मुख्य तौर पर या तो नौकरशाहों द्वारा लिये जाते हैं या फिर स्कूल मालिकों द्वारा । इस प्रक्रिया में शिक्षक ही सबसे ज्यादा उपेक्षित रहते हैं । उन्होंने यह भी रेखांकित किया है कि यहां की उच्च शिक्षा संस्थाओं एवं शिक्षक-प्रशिक्षण की संस्थाओं ने गुणवत्ता वाली शिक्षा को प्रोत्साहित करने की दिशा में अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं किया। इसके पीछे कई वजहें हो सकती हैं जिसमें अकादमिक परिसर की राजनीति को दरकिनार किया जाना एवं अकादमिक परिसर की अक्षमता प्रमुख रूप से शामिल है (हामिद; 1995, 34)।

बांग्लादेश में प्राथमिक शिक्षा के हालात पर किए गए अध्ययनों से भी यह साफ पता चलता है कि गुणवत्ता के लिहाज से यहां की शिक्षा भी कमोवेश उसी तरह की समस्याओं, चुनौतियों एवं विकारों से जूझ रही है जिस तरह की समस्याओं, चुनौतियों तथा विकारों से इस क्षेत्र विशेष के अन्य देश गुजर रहे हैं। गुणवत्ता को केन्द्र में रखकर बांग्लादेश की प्राथमिक शिक्षा के संबंध में किया गया अध्ययन यह बतलाता है कि यहां का शिक्षण मुख्यत: शिक्षक केन्द्रित, एकलमार्गीय है । यानी ज्ञान का प्रवाह सिर्फ शिक्षक से निकलकर विद्यार्थियों पर खत्म हो जाता है । यहां अध्यापन, विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के बीच होने वाली दो-तरफा संवाद की प्रक्रिया से वंचित है । कक्षा अध्यापन मुख्यत: स्मृति एवं पठन आधारित है । अध्यापन में मुख्यत: प्रश्न-उत्तर शैली अपनाई जाती है । शिक्षक छात्रों की सराहना लगभग नहीं के बराबर करते हैं । वे कक्षा-अनुशासन के संबंध में लापरवाही बरतते हैं और शिक्षक, पाठ-योजना को बिल्कुल नजरअंदाज करके चलते हैं (चौधरी एवं अन्य; 2001, 107)।

पाकिस्तान एवं श्रीलंका के संदर्भ में किया गया एक दूसरा शोध-अध्ययन पाकिस्तान की शिक्षक-प्रशिक्षण एवं छात्रों के अध्ययन-अध्यापन में व्याप्त इस प्रवृत्ति की पुष्टि करता है । शोध यह दिखलाता है कि पाकिस्तान के स्कूलों में अधिकांश 'फैसिलीटेटर' प्रशिक्षु-शिक्षकों को अभ्यास-शिक्षण के दरम्यान आजादी नहीं देते। प्रशिक्षुओं से यह उम्मीद की जाती है कि वे उसी स्मृति आधारित शिक्षण की राह पर चलें । मूल्यांकन के क्रम में यह सहजता से पाया गया कि 'फैसिलीटेटर' प्रशिक्षु-शिक्षकों पर यह जोर डालते हैं कि वे इस तरह के गैरलचीले, रूढ़ प्रश्नों तथा तैयार शुदा उत्तरपत्रों का प्रयोग करें, जिसमें चिंतन तथा सृजनात्मक योग्यताओं के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में होता यह है कि विद्यार्थी स्वभावतया या तो इन्हें रटते हैं या फिर पुस्तकों से इन उत्तरों की नकल करते हैं । यह शोध-पत्र ऐसे कुछ अंशों को उद्धत करता है जो पाकिस्तान के 'जनरल' एवं 'मेमो' से निकाले गए हैं । ये अंश हैं :-

..... *अंग्रेजी की कक्षा के दरम्यान वह* (फैसिलीटेटर के लिए सम्बोधित) *कक्षा में आती है और विद्यार्थियों से यह कहती है कि वे अपनी पुस्तकें खोलें और पेज 19 पढ़ें, ..... उन्होंने ऊँची आवाज में पढ़ना शुरू कर दिया । विद्यार्थी उनके पढ़ लेने के बाद पढ़ते थे .... जब विद्यार्थी नहीं पढ़ते थे, तब वे विद्यार्थियों को किताब से और छड़ी से पीटती थीं* (प्रथम साल के छात्र ने अपने अवलोकन के दरम्यान इसे दर्ज किया।)

..... *विज्ञान की कक्षा में शिक्षिका ने विद्यार्थियों को 'टेस्ट' दिया, उन्होंने उनके नोट बुक पर सवाल लिख दिया .....*

*उनसे कहा गया कि वे बहुत संक्षेप में इसका उत्तर दें । .... वह कुर्सी पर बैठ गई । विद्यार्थी नकल करने लग गए।*

*..... बच्चे सताए हुए लग रहे थे और दबाव से गुजरते हुए भी । विद्यार्थी ऐसी अवस्था में थे जिसमें कि उनपर बहुत ही सहजता से नियंत्रण कायम किया जा सके ।.... खेल के मैदान में वे जंगली थे..... शिक्षक केवल तभी आंख से आंख मिलाता था जबकि उसे इन विद्यार्थियों को फटकार लगानी होती थी ।*

*गणित एवं विज्ञान शिक्षण में श्यामपट्ट का शायद ही प्रयोग हुआ था। विज्ञान की पाठ्यपुस्तक की भाषा को पढ़ने पर ही जोर था । ....* (पहले वर्ष का विद्यार्थी)

*....कोई शिक्षक किसी पद्धति का प्रयोग नहीं कर रहा था सभी शिक्षक एक ही बात कर रहे थे .... मेरा फैसिलीटेटर मुझ में और मेरी पद्धति में रूचि नहीं ले रहा था....* (पहले वर्ष का विद्यार्थी)

*..... मैं ऊब चुका हूं .... मैं इस स्कूल में रहना नहीं चाहता ..... इसमें संदेह है कि मैं शिक्षक बनना चाहता हूं ।* (पहले वर्ष का विद्यार्थी) *.... मैं कोई गतिविधि नहीं कर सकता .... मेरे सलाहकार मुझे कुछ करने नहीं देते ....मैं जो कुछ भी करता हूं उसमें वे टोका-टाकी करती हैं ।* (दूसरे वर्ष का विद्यार्थी) *... दो सप्ताह का शिक्षण-प्रशिक्षण का समय, जिसे उत्साह एवं उत्तेजना से भरा हुआ होना चाहिए था वह तनाव एवं विक्षोभ से परिपूर्ण था। पर फिर भी मैंने अपने उत्साह का स्तर ऊंचा बनाए रखने की जी-तोड़ कोशिश की ...मेरे तनाव और विक्षोभ की वजह मेरे सलाहकार थे ... वह लगातार सप्ताह भर में खत्म किए जाने वाले पन्नों को पलटती रहीं । वह कोई भी गतिविधि करना पसंद नहीं करती थीं।* (द्वितीय वर्ष अंतिम टर्म का विद्यार्थी)

इन अवलोकनों के आगे शोध इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस तरह के स्कूलों में प्रशिक्षुओं के लिए ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है जिसमें कि वे प्रशिक्षण संस्थाओं से सीखे गये नवाचारों का प्रदर्शन कर सकें । पाठ्यपुस्तकें न केवल गलतियों से भरी हुई है बल्कि उनकी संरचना ऐसी है जिसमें पाठ्यपुस्तकेत्तर प्रासंगिक चीजों को भी नहीं लिया जा सकता । (जयसेना; 1995, 68-69, 73) । एक अन्य शोध-पत्र पाकिस्तान के निजी स्कूलों (लाहौर) के संदर्भ में यह रेखांकित करता है कि यहां विज्ञान-शिक्षण मुख्य तौर पर पाठ्यपुस्तक आधारित है ।

शिक्षक, विद्यार्थियों में तथ्यमूलक ज्ञान का संचरण करने के प्रेमी हैं, वह भी पाठ्यपुस्तकों से सीधे तौर पर । शोध-पत्र का कहना है कि यहां के अनेक स्कूलों के बच्चों में विज्ञान के बुनियादी विकास के कौशल का मुद्दा ध्यान का विषय नहीं बनता है। विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने मात्र से विज्ञान की पढ़ाई पूरी मान लेने की प्रवृत्ति कई स्कूलों में देखी गई । शिक्षक पढ़े गए अंशों पर ही हस्तक्षेपपूर्वक उसकी व्याख्या करते हैं । कुछ मामलों में इस बात के भी सबूत मिले हैं कि शिक्षक समझ आधारित शिक्षण की जगह स्मृति आधारित शिक्षण को तवज्जो देते हैं । विद्यार्थियों को गतिविधि में लगाना, प्रदर्शन जैसी शिक्षण-तकनीक के इस्तेमाल पर ज्यादातर स्कूलों में ध्यान नहीं दिया जाता है (ननयक्करा एवं गर्डेजी; 1995, 104)। बांग्लादेश की शैक्षिक स्थितियों को रेखांकित करता हुआ एक अन्य पत्र यह कहता है कि यहां के शिक्षक, स्मृति आधारित शिक्षण-पद्धति के माध्यम से केवल पाठ्यपुस्तकों को पढ़ाते हैं । यहां तक कि प्रशिक्षित शिक्षक भी कुछ ही दिनों में पुराने ढर्रे पर लौट आते हैं (खातून; 1995, 154) ।

व्यापक एवं सुव्यवस्थित ढंग से किया गया एक अन्य शोध, अपने गहन एवं सूक्ष्म कक्षा अवलोकन के आधार पर बांग्लादेश के सरकारी प्राथमिक विद्यालय में किए जा रहे अध्यापन का बयान कुछ इस प्रकार करता है, *गणित की कक्षा में शिक्षक 'गुणा' एवं 'सरलीकरण' की कोई व्याख्या दिए बगैर ही श्यामपट्ट पर इसके सवाल हल करने लगती है । हल कर लेने के बाद शिक्षिका विद्यार्थियों से कहती है कि वे उसी पाठ से इसी तरह का एक अन्य सवाल हल करें । जब अधिकांश विद्यार्थी उसे हल नहीं कर सके तब शिक्षिका ने उसे स्वयं ही हल करा दिया । फिर पुराने वाले ढ़र्रे पर ही विद्यार्थियों से अगला सवाल करने को कहा । गणित कक्षा में गणित अध्यापन का सामान्यत: यही ढंग था । अंग्रेजी की कक्षा में भी शिक्षिका पाठ की व्याख्या या पंक्तिश: स्पष्टीकरण का काम नहीं करती थी । उन्होंने विद्यार्थियों को खुद से पढ़ने का निर्देश दिया। दो या तीन को छोड़कर सभी विद्यार्थी शिक्षक के साथ मन ही मन भुनभुना रहे थे । जब शिक्षिका ने प्रत्येक विद्यार्थी को जोर से पाठ पढ़ने का निर्देश दिया तो केवल तीन लड़के एवं एक छात्रा ही ऐसा कर पाई । शिक्षिका के अनुरोध के बावजूद छात्राओं ने पढ़ने से मना कर दिया । संभवत: शर्मिंदा होने के भय के कारण। आखिर में शिक्षिका ने कुछ अंग्रेजी के शब्द, उसके अर्थ के साथ श्यामपट्ट पर लिख दिये और विद्यार्थियों को इसे कॉपी पर उतार लेने के लिए कहा..... कमजोर विद्यार्थी पीछे बैठे होते हैं और जब कोई काम दिया जाता है तो वे इस काम को करने का प्रयास भी नहीं करते, मानो उनसे यह सब करने की उम्मीद ही न की जा रही हो । शिक्षक भी उनसे सीधे तौर पर कोई प्रश्न नहीं करते । बीच के बेंच पर बैठे कुछ छात्र ध्यानात्मक स्थिति में दिखते हैं पर शिक्षक कभी उनके पास आकर यह देखने की कोशिश नहीं करते कि वाकई वे क्या कर रहे हैं । केवल अच्छे विद्यार्थी जो कि सामने की सीट पर बैठे होते हैं वही शिक्षक का अधिकांश ध्यान लेते हैं।*

*ऐसे छात्र ही कमोवेश कक्षा की गतिविधियों में भाग लेते हैं और कक्षा में ध्यान भी देते हैं । शिक्षक जब यह पूछते हैं कि यह सवाल कौन करेगा तब सभी विद्यार्थी आगे की सीट पर बैठे विद्यार्थियों की ओर ऐसे देखते हैं मानो केवल अगली सीट पर ही बैठे अधिगमकर्ताओं से ही जवाब की उम्मीद की जा रही है (चौधरी एवं अन्य; 2001, 109-110)।*

अध्ययन बतलाते हैं कि भारतीय स्कूलों के कक्षाई दृश्य भी उपरोक्त शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम की मूलभूत भावना से भिन्न नहीं हैं । वे दर्शाते हैं कि शिक्षण संबंधी स्थापनाओं,मान्यताओं तथा संस्कारों के लिहाज से हम एक समान 'पैराडाइम' में जी रहे हैं। 'प्रोब रिपोर्ट' ऐसी ही एक दिलचस्प कक्षा का नजारा पेश करती है, *मध्य दिल्ली में सरकारी अफसरों की प्रतिष्ठित आवासीय कालोनी में एक म्युनिसिपल प्राथमिक विद्यालय । अच्छे रखरखाव में साहबों की प्रतिष्ठा को दर्शाती हुई स्कूल इमारत । यहां साहबों के नौकरों के बच्चे पढ़ते हैं । खुले हुए कमरे, शीशों वाली बड़ी-बड़ी खिड़कियां जिनसे होकर धूप अंदर बिखरती हुई और बच्चों के बैठने के लिए साफ-सुथरी पट्टियां । कक्षा 3 में 'हवा' पर एक पाठ पढ़ाया जा रहा था । मास्टर जी ने यांत्रिक रूप से कुछ 'वैज्ञानिक तथ्य' बताये। उन्होंने बड़े श्रद्धाभाव से वही दोहरा दिया जो पाठ्यपुस्तक में छपा हुआ था । जैसे एक ही सांस में हवा के सारे लक्षण या तत्व बाहर निकल रहे थे । वायु सभी जगह विद्यमान है। वायु स्थान घेरती है। वायु का अपना कोई आकार नहीं । वायु कई गैसों का मिश्रण है। गैस पदार्थ की एक अवस्था है। आठ-नौ वर्ष के छात्रों से सम्मिलित स्वर में इन मंत्रों का पाठ कराया जा रहा था (प्रोब रिपोर्ट, हिन्दी संस्करण, 2001, 72)।*

अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत में दी जाने वाली स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता भी चिंतनीय है । यहां की स्कूली शिक्षा दोनों ही स्तरों पर यानी ज्ञानमीमांसा तथा शिक्षणशास्त्र के स्तर पर दरिद्र है । स्कूली स्तर पर दिया जाने वाला ज्ञान, ज्ञान न होकर सूचना होती है । वह सूचना भी भारतीय यथार्थ की वैविध्यता तथा उसके जीवंत सरोकारों से मेल नहीं खाती । इस सूचना का सामाजिक चरित्र भी इकहरा तथा समाज के किसी खास हिस्से का प्रतिबिम्बन करने वाला होता है । शैक्षिक बोझ को कम करने के लिए गठित समिति 'शिक्षा बिना बोझ के' (1993) इस संबंध में अपना विश्लेषण देते हुए कहती है कि, *पाठ्यक्रम को पूरा करना ही जैसे अपने आप में लक्ष्य बन गया प्रतीत होता है और इसका शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक लक्ष्यों से कोई सरोकार नहीं रहा। सामान्यतया कक्षा में पाठ्यक्रम को पूरा करने का ढंग यह होता है कि शिक्षक निर्धारित पाठ्यपुस्तक को जोर से बोलकर पढ़ देते हैं और बीच-बीच में ब्लैक बोर्ड पर महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लिख दिया करते हैं । अच्छे से अच्छे स्कूलों में भी बच्चों को प्रयोग करने, भ्रमण करने या किसी प्रकार का निरीक्षण करने का शायद ही कभी अवसर मिलता है। औसत स्कूलों में, विशेषकर ग्रामीण स्कूलों में तो कई मामलों में उपर्युक्त प्रकार का शिक्षण भी नहीं होता है । इस स्थिति में यह स्पष्ट होता है कि शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न शिक्षक और बच्चे दोनों आनंद की भावना ही खो चुके हैं। अधिकतर शिक्षकों और बच्चों के लिए पठन-पाठन केवल नीरस कार्य बनकर रह गया है । प्रतिष्ठित या गिने चुने संस्थानों में पढ़ने वाले बच्चों को छोड़कर स्कूल जाने वाले अधिकतर बच्चों के लिए यह स्कूली शिक्षा नीरस, बोझिल, अरुचिकर और कटु अनुभव प्रदान करने वाली प्रतीत होती है* (शिक्षा बिना बोझ के, 1993 5)। रपट इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि हमारी पाठ्यपुस्तकें, बच्चों की सोचने तथा जांच-पड़ताल करने की क्षमता को विकसित करने का काम नहीं करती बल्कि वह सूचनाओं तथा तथ्यों पर ही जोर ड़ालती है । रपट यह पाती है कि पाठ्यपुस्तकों में दिया गया ज्ञान और विद्यार्थियों के रोजमर्रा के अनुभवों में एक गहरा फासला है । पाठ्यपुस्तकों में केवल समृद्ध वर्ग की जीवन शैली और जीवन दर्शन के बारे में बताया जाता है। यहां की पाठ्यपुस्तकें बच्चों के दृष्टिकोण से नहीं लिखी जातीं । इनकी भाषा तथा इनमें वर्णित विषयवस्तु दोनों ही बच्चों की उपेक्षा करते हैं ।

'प्रतीची ट्रस्ट' द्वारा पश्चिम बंगाल में प्राथमिक शिक्षा के बारे में किया गया अध्ययन यह बतलाता है कि वहां शिक्षक, प्रशिक्षण के दौरान सीखी गई बातों का इस्तेमाल कक्षा-अध्यापन में नहीं करते। शिक्षकों ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है । उन्होंने इस सन्दर्भ में कक्षा-भवनों, शिक्षकों तथा शिक्षण-सामग्रियों के अभाव को रेखांकित किया। उन्होंने यह ध्यान दिलवाया कि उनके पास खेल के मैदान और शिक्षण-किट नहीं है । यहां तक कि नक्शा एवं चार्ट का भी अभाव है । ऐसे अभावों से गुजरते हुए वे भला कक्षा स्थितियों में प्रशिक्षण की बातों को कैसे लागू कर सकते हैं । अट्ठारह प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों से किए गए साक्षात्कार के आधार पर रपट यह कहती है कि अधिकांशत: शिक्षक पारंपरिक विधियों से ही अध्ययन-अध्यापन करते हैं । इसमें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वे प्रशिक्षित शिक्षक हैं अथवा अप्रशिक्षित (द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट; 2002, 69) ।

'प्रोब रिपोर्ट' (हिन्दी संस्करण, 2001) अपने अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि कक्षा में बच्चे पढ़ाए जाने वाली शिक्षण-सामग्री के समझ में ना आने के दबाव से लगातार जूझते हैं । यही नहीं भारतीय स्कूलों में बरता जाने वाला ज्ञान विद्यार्थियों के जीवन की सच्चाई से बहुत दूर होता है । रपट यह मानती है कि विद्यार्थियों पर सूचनाओं का हमला जारी है । ध्यातव्य

है कि इसके पहले यशपाल समिति (1993) ने भी लोगों का ध्यान इस तरफ खींचा था । प्रोब रिपोर्ट स्कूली शिक्षाशास्त्र के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए कहती है कि, ''वर्तमान में सीखने के केन्द्रीकृत तरीकों और जांचने की एक समान कसौटियों के प्रति बढ़ते रुझान के कारण सूचना और सीखने के बीच भ्रम और भी बढ़ता गया है। चूंकि स्कूल में बहुत कुछ 'सीखने' को नहीं मिलता इसलिए बच्चों, अध्यापकों और माता-पिता का मुख्य काम जैसे-तैसे स्कूल को 'सहते जाना भर' ही होता है (प्रोब रिपोर्ट, हिन्दी संस्करण, 2001, 83, 86) ।

भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षण के विश्लेषण के आधार पर शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार का कहना है कि यहां के प्रशिक्षण में पाठ-योजना को काफी तवज्जो दिया जाता है । पर पाठ योजना बच्चों के विकास को अपने सरोकार का केन्द्रीय मुद्दा न बनाकर इसी बात पर सारी उर्जा खर्च करती है कि कितनी संख्या में पाठ पढ़ाए जा चुके । ज्यादा से ज्यादा वह इस बात पर ध्यान देते हैं कि उन्होंने जिस विषय-वस्तु का अध्यापन किया है उस पर शिक्षार्थियों का कितना कब्जा हो गया । इस कब्जे को जांचने के लिए वे विषय की 20-20 पाठ-योजना पढ़ा दिये जाने के बाद एक टेस्ट लेते हैं । इन अर्थों में पाठ-योजना आधारित प्रशिक्षण वर्तमान शिक्षा की उसी भावना को प्रतिध्वनित करता है जिसमें शिक्षार्थी के विकास से भी ऊपर पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को पढ़ा लिए जाने को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है । निचोड़ यह है कि 'पाठ-योजना' की संस्कृति हमें वृहत्तर विकासात्मक संदर्भ एवं बच्चों की आवश्यकता से काट देती है तथा विकास आधारित नमूने की जगह 'उत्पाद' आधारित शिक्षणशास्त्रीय नमूने को ही आगे बढ़ाती है (कुमार; दिसम्बर, 2002 (क), 12)

शिक्षाविद् प्रो. अनिल सद्गोपाल का विश्लेषण है कि भारत में निहित शिक्षणशास्त्र की रीढ़ की हड्डी पाठ-योजना तथा शिक्षण-अभ्यास है, जो कि अभी भी औपनिवेशिक हरबर्ट के नमूने का अनुसरण करती चली जा रही है । वे अपने पत्र में इस विडम्बना की तरफ ध्यान दिलाते हैं कि भारत-शिक्षण-प्रशिक्षण में औपनिवेशिक विरासत की जड़ता में जी रहा है । उनका विश्लेषण है कि भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम ने विषमता, सामाजिक, आर्थिक स्तरीकरण, ऊँच-नीच पर आधारित जाति व्यवस्था का पदानुक्रम, पितृसत्तात्मकता, लैंगिक विषमता, सांस्कृतिक एवं जातीय पहचान का संघर्ष, छुपी हुई बेरोजगारी, क्षेत्रीय असंतुलन, भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं पर आक्रमण, स्वाधीनता आन्दोलन से निकले हुए मूल्यों का संकोचन, सांप्रदायिक ताकतों का उठान तथा भारत की समृद्ध विविधता को खारिज करते हुए भारत पर इकहरे सांस्कृतिक वर्चस्व को थोपने की प्रवृत्ति जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को अभी तक पहचाना नहीं है । भारतीय राष्ट्रवाद की खासियत बहुजातीयता, बहु-सांस्कृतिक तथा बहुभाषा जैसे मुद्दों एवं सरोकारों को अपने अन्दर समेटने में भारतीय शिक्षणशास्त्र असफल रहा है (सद्गोपाल, दिसम्बर 2002)। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेन्सी के वित्तीय समर्थन पर चलने वाली शैक्षिक पहलकदमी के तहत लगाए जाने वाले 'पैराटीचर्स' नामक नई परिघटना ने भी शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर नई चिन्तायें पैदा की हैं । जहां औपचारिक धारा के स्कूल में नियमित शिक्षकों के लिए कम से कम एक वर्ष की समयावधि वाला प्रशिक्षण आमतौर पर आवश्यक माना जाता है वहीं पैरा शिक्षक के लिए अमूमन 21 दिन का प्रशिक्षण ही पर्याप्त माना जा रहा है । निश्चित रूप में पैरा शिक्षक नियमित शिक्षकों की तुलना में दोयम दर्जे के शिक्षकीय गुणवत्ता वाले होंगे । इससे यह साफ होता है कि चूंकि पैरा-शिक्षक देश के गरीब एवं उपेक्षित तबकों के लिए हैं अत: सरकार संभवत: यह मानकर चल रही है कि इन्हें तो 21 दिन के प्रशिक्षित शिक्षक/शिक्षिका जो पढ़ा ले जायेंगे उतना ही पर्याप्त होगा । यह एक तरह से सैद्धांतिक रूप में यह मान लेना है कि विषमता के आधार पर बंटे हुए समाज में सबको एक समान गुणवत्ता वाली शिक्षा का हक नहीं है । इसके साथ ही विश्वबैंक की बहु-कक्षायी अध्यापन नामक शिक्षाशास्त्र विरोधी अवधारणा भी प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह है ।

इस अवधारणा के तहत अब पांच कक्षाओं को पढ़ाने के लिए केवल एक शिक्षक नियुक्त किए जाने का प्रावधान है (देखिए इस लेखक का शोधपत्र, परिप्रेक्ष्य, अप्रैल-अगस्त 2002) ध्यातव्य है कि शिक्षा नीति के अनुसार 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' के तहत हर प्राथमिक एवं मिडिल स्कूल को कम से कम तीन शिक्षक उपलब्ध करवाने का लक्ष्य था । राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने अपने दस्तावेज (विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, नवम्बर 2000) में शिक्षा को और भी घटिया करने का प्रावधान सुझाया है । इस प्रस्ताव के अनुसार 6-14 वर्ष आयु समूह के बच्चों को पत्राचार के माध्यम से शिक्षित किए जाने की राह दिखाई गई है (सद्गोपाल; 2001)।

पाकिस्तान की शिक्षा के विश्लेषण में इम्तियाज अहमद (1999) यह कहते हैं कि पाकिस्तानी सत्ता, शिक्षा के 'सरकारीकरण' की प्रक्रिया के जरिए, 'राष्ट्रवादी विचारधारा' को प्रसारित करती है । इसके तहत मुख्यत: दो चीजें की जाती हैं (क) इस्लाम का गौरवान्वीकरण (ख) भारत एवं हिन्दू के प्रति घृणा का भाव उपजाना। अहमद ने इस संदर्भ में के. के. अजीज (द मर्डर ऑफ हिस्टी : ए क्रिटिक ऑफ हिस्टी टैक्सट् यूज्ड इन पाकिस्तान, लाहौर, वेनगॉड, 1993, 192-194) के विश्लेषण को उद्धत

किया है । के. के. अजीज अपने विश्लेषण में कहते हैं कि पाकिस्तान की पाठ्यपुस्तकें ऐतिहासिक संदर्भों एवं समसामयिक राजनीति दोनों के ही संदर्भ में अपने विद्यार्थियों में भारत एवं हिन्दू के प्रति घृणा भाव फैलाने वाले हैं। इस प्रकार की घृणा उपजाने के संदर्भ में निम्न विधियों का सहारा लिया जाता है - (क) हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का पूर्वाग्रही विवरण देना और इसे 'गंदा' एवं 'दोयम दर्जे' का बतलाना । (ख) हिन्दू के ऊपर मुस्लिम शासन की प्रशंसा इस रूप में करना कि इसने हिन्दू धर्म के बुरे विश्वासों तथा रीति-रिवाजों को खत्म किया (ग) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को पूरी तरह से हिन्दू संगठन सिद्ध करना (घ) 1947 के भारत विभाजन के समय हुए दंगों का जिम्मेवार हिन्दू और सिक्खों को दिखाना एवं यह साबित करना कि इसमें मुस्लिम जिम्मेवार नहीं हैं, उन्हें सिर्फ असहाय शिकार के रूप में प्रस्तुत करना ।

अहमद (1999) का विश्लेषण है कि बांग्लादेश की इतिहास की पाठ्यपुस्तकें आज केवल बंगाली राष्ट्र के नायक, नायिकाओं का गरिमामण्डन करते हैं । बांग्लादेश के इस इतिहास में वहां के आदिवासी, 'हिल' नायक-नायिकाओं के लिए कोई जगह नहीं है। इस तरह यहां के आदिवासी उस राज्य के इतिहास से अपनी पहचान नहीं बिठा पाते हैं, जिसके कि वे नागरिक हैं । इस तरह की स्थिति इन आदिवासियों में एक तरह का अलगाव उपजाने का काम करती है । श्रीलंका की शैक्षिक हालत पर टिप्पणी करते हुए भी अहमद (1999) का कहना है कि वहां की शिक्षा भी बौद्ध, सिंघली जनसंख्या की तरफ झुकी हुई है और वह तमिल जनसंख्या को अलगाती है ।

शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार (सन 2002-ख) ने अपनी पुस्तक, 'प्रीजूडीस एण्ड प्राइड' में अनेक उदाहरणों से यह दिखलाया है कि भारत एवं पाकिस्तान के स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की पाठ्यपुस्तकें वस्तुत: दोनों देशों के आपसी तनाव को शिथिल करने की जगह उसे पुनर्बलित करने वाली ही हैं। ये पाठ्यपुस्तकें ऐसा कुछ भी नहीं करती जिससे कि युवा मस्तिष्क इन दोनों देशों के बीच शांति संभावना के बीज देख सकें । वस्तुत: ये (पाठ्यपुस्तकें) दोनों समाजों को एक दूसरे के संबंध में अंधेरे में रखने के लिए भी जिम्मेवार हैं । प्रो. कुमार ने अपनी इस पुस्तक में यह बखूबी दिखलाया है कि किस प्रकार दोनों देशों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की पाठ्यपुस्तकें अपने विद्यार्थियों को राष्ट्रीय रूप से मान्य नजरियों और विश्वासों में समाजीकृत करने के एजेण्डे को सरअन्जाम देती हैं । इस तरह की पाठ्यपुस्तकें, न केवल एक अनुशासन के रूप में इतिहास को क्षतिग्रस्त करती हैं । बल्कि ऐसा करते हुए विद्यार्थियों में इतिहास-सम्मत चेतना को बाधित करते हुए उनके संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं बौद्धिक विकास को भी बाधित करती हैं ।

मानव के विकास में शिक्षा के गहरे योगदानों और दक्षिण एशिया की संस्कृति की परम्पराओं तथा लोगों में पाई जाने वाली समानता के साथ-साथ यहां की विविधता को देखते हुए जरुरत इस बात की है कि हम शिक्षा के संदर्भ में इन विविधताओं एवं समानताओं को समझें, संबोधित करें ताकि इस क्षेत्र के लिए प्रासंगिक शिक्षा की रूपरेखा तैयार की जा सके । आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले समान अनुभवों तथा भिन्न अनुभवों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर दक्षिण एशिया के क्षेत्र के प्राथमिक शिक्षा से जुड़े हुए विभिन्न आयामों, कारकों तथा संदर्भों की व्यापक गहरी एवं संश्लिष्ट समझ बनायें । इस तरह का तुलनात्मक अध्ययन न केवल दक्षिण एशिया बल्कि इसके अन्तर्गत आने वाले देशों की अपनी विशिष्टताओं तथा संदर्भों में शिक्षा के हालात, उसके साझा सरोकारों तथा इस दिशा में किए गए प्रयासों एवं नवाचारों के साथ-साथ शिक्षा की चिन्ताओं तथा चुनौतियों को समझने तथा पड़ताल करने और भविष्य के ऐजेण्डे की पहचान करने में मददगार होगा । दक्षिण एशिया के प्राथमिक शिक्षा के विविध आयामों की संश्लिष्ट, तुलनात्मक एवं व्यापक पड़ताल करने वाले शोध अध्ययनों का अभाव भी इस तरह के अध्ययन को और जरूरी बना देता है ।

दक्षिण एशिया के शैक्षिक हालात को समझने के लिए कोई संश्लिष्ट सिद्धांत या विमर्श बने बनाये रूप में आज हमारे पास उपलब्ध नहीं है । इसलिए इस क्षेत्र विशेष के शैक्षिक हालात को समझने के लिए हमें कई तरह के सिद्धांतों एवं विमर्शों, उपागमों, दृष्टिकोणों की ओर देखना होगा । दक्षिण एशिया, चूंकि कई तरह के दौर और उसकी मिली-जुली जटिलताओं से गुजरता रहा है इसलिए लाजमी है कि वह अपने संबंध में समझ बनाने के लिए एक ज्यादा जटिल बहुआयामी समझ की मांग करे । यह क्षेत्र लम्बे समय तक औपनिवेशिक दौर से गुजरा । नए राष्ट्र-राज्यों के बनने की परिघटना को देखा-जाना। आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया अभी अपने सफरनामे में ही थी कि भूमंडलीकरण, संरचनात्मक समायोजन, बाजारीकरण, तथा नई विश्व बाजार व्यवस्था ने उसे झकझोरना शुरू कर दिया । इन सारी परिघटनाओं के आपसी घात-प्रतिघात तथा उनकी जटिल अर्न्तगुंथन को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम इस सारी परिघटना पर रोशनी डालने वाले अलग-अलग सिद्धांतों, दृष्टिकोणों की ओर देखें तथा उनसे मदद लेकर हम एक संश्लिष्ट बहु-आयामी समझ की ओर बढ़ें । इसी तरह की समझ के आधार पर हम इस क्षेत्र की शिक्षा के बहुआयामी यथार्थ की समझ बना सकेंगे। ◆

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


**अहमद, इम्तियाज 1999 :** साउथ एशियन कान्फ्रेन्स आन एजुकेशन, नवम्बर 14-18, 1999 एजुकेशन इन द साउथ एशियन कन्टेक्स्ट : इशूज एण्ड चैलेन्जेज, ए कलेक्शन ऑफ पेपर्स प्रेजेन्टेड ऐट कान्फ्रेन्स (अनएडिटेड), डिपार्टमेन्ट ऑफ एजुकेशन सेन्ट्रल इन्स्टीच्यूट ऑफ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, दिल्ली।

**कालीजबख्श, एच, हामिद :** 'प्राइमरी एजुकेशन इन पाकिस्तान : ह्वेयर वी आर एण्ड ह्वेयर वी वान्ट टू गो' कालीजबख्श, एच, हामिद द्वारा संपादित डवलपिग द अल्टीमेट रिसोर्स : इनोवेशन इन टीचर एजुकेशन इन साउथ एशिया में संकलित, अली इन्स्टीयूट ऑफ एजुकेशन, 1995, फिरोजपुर रोड, लाहौर, पाकिस्तान।

**कुमार, कृष्ण (2002 क) :** 'प्लान्ड लेसन एण्ड अदर प्रॉब्लम्स ऑफ टीचर ट्रेनिंग बावा, एम.एस. एवं अन्य द्वारा संपादित संकलन, रिफ्लेक्सनस् ऑन लेसन प्लानिंग में संकलित, इन्स्टीच्यूट ऑफ एडवान्स स्टडीज इन एजुकेशन, यूनिवर्सिटी आफ दिल्ली, दिसम्बर, 2002

**कुमार, कृष्ण (2002 ख) :** प्रिजुडिस एण्ड प्राइड, स्कूल हिस्ट्रीज ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पेनगुइन बुक्स, नई दिल्ली ।

**खातून, शरीफा (1995) :** 'टीचर एजुकेशन इन बांग्लादेश' कालीजबख्श, एच, हामिद द्वारा संपादित डवलपिग द अल्टीमेट रिसोर्स : इनोवेशन इन टीचर एजुकेशन इन साउथ एशिया में संकलित, अली इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, 1995, फिरोजपुर रोड, लाहौर, पाकिस्तान

**चौधरी, आर. मुश्ताक, ए तथा अन्य (संपा):** 'ए केश्चन ऑफ क्वालिटी: स्टेट ऑफ 'प्राइमरी एजुकेशन इन बांग्लादेश', वाल्यूम 1 चैम्पियन फॉर पॉपुलर ऐजुकेशन, द यूनिवर्सिटी प्रेस लिमिटेड, 2001, बांग्लादेश।

**जयसेना, अशोक (1995) :** 'ए रिव्यू ऑफ टीचिंग प्रैक्टिस प्रोगाम्स् इन पाकिस्तान एण्ड श्री लंका', कालीजबख्श, एच, हामिद द्वारा संपादित डिविलपिंग द अल्टीमेट रिसोर्स : इनोवेशन इन टीचर एजुकेशन इन साउथ एशिया में संकलित, अली इन्सीच्यूट ऑफ एजुकेशन, 1995, फिरोजपुर रोड, लौहार, पाकिस्तान ।

**तज्जुदीन, मोहम्मद (1999) :** 'स्टेट ऑफ मॉइनोरिटीज इन बंगलादेश, साउथ एशियन स्टडीज (बाई-एनुअल जनरल ऑफ साउथ एशिया स्टडीज सेन्टर) वाल्यूम 34, जनवरी-जून 1999, नं. 1, यूनिवर्सिटी ऑफ जयपुर, जयपुर।

**द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट (2002) :** 'प्रतीची (इण्डिया) ट्रस्ट'

**ननयक्करा, एस एवं गर्डेजी (1995) :** 'टीचर प्रोब्लेम्स् एण्ड ट्रेनिंग नीड्स रिलेटेड टू द टीचिंग ऑफ साइंस इन अपर प्राईमरी क्लासेज : ए स्टडी ऑफ ए क्लस्टर ऑफ प्राइवेट स्कूल इन लाहौर, कालीजबख्श एच, हामिद द्वारा संपादित डिविलपिंग द अल्टीमेट रिसोर्स : इनोवेशन इन टीचर एजुकेशन इन साउथ एशिया में संकलित, अली इन्स्टीच्यूट ऑफ एजुकेशन, 1995 फिरोजपुर रोड, लाहौर, पाकिस्तान

**पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इण्डिया, हिन्दी संस्करण (2001) :** 'ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,

**पश्चिमी बंगाल सरकार (अगस्त 1992) :** 'रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन (अशोक मित्र रिपोर्ट) सन् 1992

**प्रपत्र, राघवेन्द्र (2002) :** 'शिक्षा के विकास में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सहयोग का प्रभाव, परिप्रेक्ष्य वर्ष 9 अंक 1-2, अप्रैल-अगस्त 2002, नीपा, नई दिल्ली।

**बनर्जी, सुमन्त (1999) :** 'श्रींकिंग स्पेस : माइनोरिटी राइट्स इन साउथ एशिया फॉरम ऑफ ह्यूमन राइट्स, काठमांडू ।

**भट्टाचार्य, एस.पी. (1995) :** 'एजुकेशन इन द सार्क कन्ट्रीज, रिजेन्सी पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।

**मुर्शीद, ताजीन (एम) 1997 :** 'स्टेट, नेशन, आईडेन्टीटी : द क्वेस्ट फॉर लेजिटीमेसी इन 'बंग्लादेश, साउथ एशिया, (जनरलऑफ साउथ एशियन स्टडीज), वाल्यूम नं. 2, दिसम्बर 1997

**यूनेस्को, फ्रांस और सी.वी.एस.ई. दिल्ली (2000) :** ग्लोबलाइजेशन एण्ड लिविंग टूगेदर : द चैलेन्जेज फॉर एजुकेशनल कान्टैस्ट इन एशिया

**वर्ल्ड बैंक एटलस (2003) :** द वर्ल्ड बैंक, यू.एस.ए.

**वॉनस्केन्डल, विलियम एवं अन्य 2000 :** द चित्तांगौंग हिल ट्रैक्ट्स लिविंग इन वॉडरलैंड, व्हाइट लोटस को. लिमिटैड्, बैंकाक ।

**वॉनस्केन्डल, विलियम 2000 :** स्टेटलेस इन साउथ एशिया : द मेकिंग ऑफ द इण्डिया बंग्लादेश एन्केब्स्, - द जनरल ऑफ एशियन स्टडीज, वाल्यूम 61 नं. 4, फरवरी 2002, द एसोसिएशन फॉर एशियन स्टडीज, आइ. एन.सी.यू.एस.ए.

**शर्मा, एस.एल और ओमेन, टी.के.संपा, (2002) :** नेशन एण्ड नेशनल आइडेन्टिटी इन साउथ एशिया, ओरिएन्ट लेंगमेन, दिल्ली ।

**सद्गोपाल, अनिल (2003) :** नाइदर कोलोनाइजेशन नॉर ग्लोबलाइजेसन : री-कन्सट्रक्शन टीचर एजुकेशन इन इण्डियन रीयलिटी, नेशनल एसेसमेन्ट एण्ड एक्रीडेशन कांसिल एण्ड नेशलन काउन्सिल फॉर टीचर एजुकेशन द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में प्रस्तुत पत्र, दिसम्बर 22-23, 2003 पुणे ।

**सद्गोपाल, अनिल (2001) :** पॉलिटिकल एकोनॉमी ऑफ द नाइनटीथर्ड एमेन्डमेन्ट बिल, मेनस्ट्रीम, दिसम्बर 22, 2001

**सद्गोपाल, अनिल (1999) :** एजुकेशन इन साउथ एशिया : रीकन्सट्रक्टींग बिदाउट फीयर ऑर प्रेजूडीस, साउथ एशियन कान्फ्रेन्स ऑन एजुकेशन, नवम्बर 14-18, 1999, डिपार्टमेन्ट आफ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, दिल्ली।

**समद, सलीम (1999) :** स्टेट ऑफ मॉइनोरिटीज इन बंग्लादेश, साउथ एशियन स्टडीज (बाई-एनुअल जनरल ऑफ साउथ एशिया स्टडीज सेन्टर) वाल्यूम 34, जनवरी-जून 1999 नं.1, यूनिवर्सिटी ऑफ जयपुर, जयपुर।

**सलेक्टेड एजुकेशनल स्टेटेटिक्स 2000-2001 :** प्लानिंग, मॉनिटरिंग एण्ड स्टेटेटिक्स डिविजन, डिपार्टमेन्ट ऑफ सेकेन्ड्री एण्ड हायर एजुकेशन मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डव्लपमेन्ट, गवर्मेन्ट ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली , 2002

**ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया (1998) :** द एजुकेशन चैलेंज, पब्लिश्ड फॉर द ह्यूमन डेब्लपमेन्ट सेन्टर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस ।

**ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया (2001) :** द जेंडर क्वेश्चन, पब्लिश्ड फॉर द ह्यूमन डेब्लपमेन्ट सेन्टर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, करांची

**ह्यूमन डेव्लपमेन्ट इन साउथ एशिया (2002) :** ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, करांची

**ह्यूमन डेव्लपमेन्ट रिपोर्ट 2002 :** पब्लिशड फॉर द यूनाइटेड नेशन्स डब्लपमेन्ट प्रोग्राम (यू. एन.डी.पी.) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ।